राज्य राजनीति में राज्यपाल की भूमिका
[THE ROLE OF GOVERNOR IN STATE POLITICS]

राज्य की कार्यपालिका का वैधानिक प्रधान : राज्यपाल
(CONSTITUTIONAL HEAD OF THE EXECUTIVE OF STATE : GOVERNOR)

राज्य की कार्यपालिका में राज्यपाल और एक मन्त्रिपरिषद होती है। संविधान के द्वारा राज्यों में भी संसदात्मक व्यवस्था की स्थापना की गयी है और इस संसदात्मक व्यवस्था में राज्यपाल राज्य की कार्यपालिका का वैधानिक प्रधान होता है जबकि मन्त्रिपरिषद राज्य की कार्यपालिका सत्ता की वास्तविक प्रधान होती है।

मेहरू युग में राज्यपाल का पद 'गाड़ी के पांचवें पहिये' (Fifth Wheel in a Coach) के समान बनकर रह गया था। इसी कारण से एक भूतपूर्व राज्यपाल **पद्मजा नायडू** ने कहा भी था कि "राज्यपाल सोने के पिंजड़े में निवास करने वाली चिड़िया के समतुल्य है।" मध्य प्रदेश के भूतपूर्व राज्यपाल **पट्टाभि सीतारमैय्या** के अनुसार, "राज्यपाल का कार्य मेहमानों की इज्जत करने, उनको चाय, भोजन तथा दावत देने के अलावा कुछ नहीं।" **श्रीप्रकाश** जैसे अनुभवी राज्यपाल ने भी कहा था कि "मुझे पूर्ण विश्वास है कि संवैधानिक राज्यपाल के रूप में निर्धारित स्थान पर हस्ताक्षर करने के अतिरिक्त मेरा अन्य कोई कार्य नहीं है।" उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व राज्यपाल **एच. पी. मोदी** ने बताया कि "कार्यों के अभाव में मैंने अपने तथा अपने कर्मचारियों के लिए कार्यों का सृजन किया।" एक राज्यपाल ने तो यहां तक कहा कि "वे नहीं जानते थे कि राष्ट्रपति को पाक्षिक प्रतिवेदन में क्या भेजना चाहिए।" पश्चिमी बंगाल के राज्यपाल **डॉ. एच. सी. मुखर्जी** तो 'कलकत्ता के राजभवन' में इतने 'बोर' हो गये कि पदमुक्ति के लिए कुछ ही महीनों में पण्डित नेहरू से विनम्र प्रार्थना करने लगे।

चौथे आम चुनाव के बाद यह मत जोर पकड़ने लगा कि "पांचवां पहिया होने के बजाय राज्यपाल का प्रतिष्ठित पद परमश्रेष्ठ सामाजिक संस्था और एक वैधानिक आवश्यकता है।" अब राज्यपाल का पद आभूषणवत (Ornamental) नहीं रह गया था। बदले राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में उसे '**एक नयी भूमिका**' (Role) अदा करनी थी। राज्यपाल की इस '**भूमिका**' परिवर्तन के कई कारण थे—**प्रथम**, मुख्यमन्त्रियों के दुर्बल व्यक्तित्व, **द्वितीय**, एकदलीय बहुमत के बावजूद राज्य स्तर पर पायी जाने वाली दल के भीतर की गुटीय राजनीति, **तृतीय**, दल-बदल की प्रवृत्ति और अस्थिरता, **चतुर्थ**, राज्यों में प्रादेशिक दलों का शक्तिशाली होना।

राज्यपाल की भूमिका पर इस आधार पर आक्षेप लगाया गया कि कुछ राज्यपाल निष्पक्षता और दूरदर्शिता जिसकी उनसे अपेक्षा की गई थी, के गुणों को प्रदर्शित नहीं कर पाये। कुछ राज्यपालों द्वारा विशेष रूप से राष्ट्रपति शासन की सिफारिश में और राष्ट्रपति के विचार के लिए राज्य विधेयक को आरक्षित रखने में निभाई गई भूमिका से जबरदस्त विद्वेष उत्पन्न हुआ। राज्यपालों को अवधि के समाप्त होने से पूर्व ही बार-बार हटाने तथा स्थानान्तरण से इस पद की गरिमा कम हो गई। इस बात की आलोचना भी की गई है कि संघ सरकार अपने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए राज्यपालों को प्रयोग में लाती है। बहुत-से राज्यपाल, जो कि संघ के अधीन अपने पद को बढ़वाने के लिए इच्छुक होते हैं या अपनी सेवा अवधि के बाद राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाना चाहते हैं, स्वयं को केन्द्र के एजेन्ट के रूप में समझते आये हैं।

डॉ. इकबाल नारायण के शब्दों में, "संवैधानिक क्षमता के न्यायिक दृष्टिकोण से ही राज्यपाल की भूमिका पर विचार करना पर्याप्त नहीं है। आवश्यक यह है कि राजनीतिक व्यवस्था की प्रामाणिकता पर पड़े उनके व्यवहार एवं कार्यों के व्यापक प्रभावों का मूल्यांकन किया जाय।"[1]

Scanned with CamScanner

राज्यपाल की नियुक्ति (Appointment of the Governor)

राज्यपाल की नियुक्ति संघ की कार्यपालिका के प्रधान राष्ट्रपति द्वारा की जाती है और वह राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त अपना पद धारण करता है। राज्यपाल की नियुक्ति पांच वर्ष के लिए की जायेगी, लेकिन वह अपने उत्तराधिकारी के पद ग्रहण करने तक अपने पद पर बना रहेगा।

नियुक्त राज्यपाल, निर्वाचित क्यों नहीं?

(WHY AN APPOINTED GOVERNOR AND NOT AN ELECTED ONE?)

राज्यपाल पद के सम्बन्ध में संविधान सभा की '**प्रान्तीय संविधान समिति**' (Provincial Constitution Committee) ने सुझाव दिया था कि राज्यपाल का सर्वसाधारण जनता द्वारा वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनाव किया जाना चाहिए। यह विचार उनकी इस धारणा के अनुकूल था कि प्रत्येक राज्य को संघ की इकाई होने के नाते अधिक से अधिक स्वायत्तता की स्थिति प्राप्त होनी चाहिए। इसके बाद राज्यपाल के सम्बन्ध में दो अन्य सुझाव दिये गये। **प्रथम**, राज्य विधानमण्डल के निम्न सदन या दोनों सदनों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर राज्यपाल का निर्वाचन किया जाय और **द्वितीय**, निम्न सदन (राज्य की विधानसभा) द्वारा चार नामों का सुझाव दिया जाय जिनमें से किसी एक को राष्ट्रपति के द्वारा राज्यपाल के पद पर नियुक्त किया जाय। इन तीनों ही सुझावों को अस्वीकार करते हुए संविधान सभा ने राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति की पद्धति को अपनाया। एक निर्वाचित राज्यपाल के स्थान पर मनोनीत राज्यपाल को अपनाने के निम्न कारण थे :

(1) संविधान में संघ और राज्यों के लिए संसदीय व्यवस्था को अपनाया गया था और एक निर्वाचित राज्यपाल तथा संसदीय शासन व्यवस्था परस्पर मेल नहीं खाते। निर्वाचित प्रधान वास्तविक शक्तियां ग्रहण कर सकता है और राज्य प्रशासन के वैधानिक प्रधान के स्थान पर वास्तविक प्रधान बन सकता है। निर्वाचित प्रधान होने पर राज्यपाल और मन्त्रिमण्डल में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी, क्योंकि मन्त्रिमण्डल भी जनता का प्रतिनिधि होता है।

(2) राज्यपाल का प्रत्यक्ष निर्वाचन सामान्य निर्वाचन के समय नेतृत्व की कठिन समस्या पैदा कर देगा। चुनाव के समय प्रत्येक राजनीतिक दल का राज्य में एक नेता होना आवश्यक है। यह नेता कौन होगा—राज्यपाल या मुख्यमन्त्री? राज्यपाल नेता नहीं हो सकता क्योंकि वास्तविक सत्ताधारी मुख्यमन्त्री है। राज्यपाल मुख्यमन्त्री का उम्मीदवार हो, यह भी बिलकुल अनुचित लगता है।

(3) यदि राज्यपाल जनता द्वारा निर्वाचित न होकर विधानमण्डल द्वारा निर्वाचित हो, तो मन्त्रिमण्डल तथा राज्यपाल में परस्पर स्पर्द्धा उत्पन्न होने की सम्भावना तो कम हो जाती है, किन्तु इस व्यवस्था में एक और गम्भीर दोष है। इस बात की आशंका है कि राज्यपाल के निर्वाचन में जो दल सहायक होंगे, राज्यपाल उनके हाथों में कठपुतली बनकर रह जायेगा। राज्यपाल का निर्वाचन स्थायी रूप से तो होता नहीं है, अतः पुनर्निर्वाचित होने के कारण वह राज्य विधानमण्डल के बहुमत दल को प्रसन्न करने की अनुचित चेष्टाएं कर सकता है।

(4) प्रारम्भ में संविधान-निर्माता एक अशक्त संघ और शक्तिशाली राज्यों के पक्ष में थे और उस समय यह सोचा गया था कि राज्यपाल के निर्वाचन में राज्य की जनता या राज्य विधानमण्डल को शक्ति दी जानी चाहिए, लेकिन भारत के विभाजन और देश की सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को देखते हुए संविधान-निर्माताओं के विचार बदले और अब उन्होंने सोचा कि केन्द्रीय सरकार को पर्याप्त शक्तिशाली बनाने पर ही देश की स्वतन्त्रता और अखण्डता की रक्षा सम्भव हो सकती है। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से राज्य की जनता द्वारा निर्वाचित राज्यपाल राज्य के प्रधान के रूप में कार्य करता, केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधि के रूप में नहीं। संविधान-निर्माता चाहते थे कि राज्यपाल कुछ परिस्थितियों में राज्य में संघीय शासन के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करे। अतः राज्यपाल के सम्बन्ध में संघीय शासन द्वारा मनोनयन की पद्धति को अपनाया गया।

(5) संविधान सभा के कुछ सदस्यों ने सुझाव दिया था कि राज्य विधानमण्डल द्वारा प्रस्तुत सूची में से राष्ट्रपति राज्यपाल को नियुक्त करे, लेकिन इसे इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया कि नामों को चुनने में विधानमण्डल गुटबन्दी के आधार पर कार्य करेगा और इस प्रकार से पद प्राप्त करने वाला राज्यपाल राज्य के सभी राजनीतिक वर्गों से सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं कर सकेगा।

(6) राज्य की राजनीतिक स्थिति में राज्यपाल की भूमिका एक स्वतन्त्र और निष्पक्ष मध्यस्थ एवं निर्णायक की है। यदि राज्यपाल को जनता या विधानमण्डल द्वारा निर्वाचित किया जाता तो सम्भावना इस बात की है कि राज्यपाल उसी राज्य का निवासी होता और इस बात की बहुत अधिक आशंका थी कि ऐसा राज्यपाल खुद भी दलबन्दी और गुटबन्दी का शिकार हो जाता। अतः सही रूप में यह सोचा गया कि एक निर्वाचित प्रधान की अपेक्षा मनोनीत राज्यपाल एक स्वतन्त्र और निष्पक्ष मध्यस्थ एवं निर्णायक की भूमिका अधिक अच्छे रूप में निभा सकेगा।

Scanned with CamScanner

इस प्रकार राज्यपाल की नियुक्ति के सम्बन्ध में कनाडा के संविधान का अनुकरण किया गया है, जहां राज्यपालों की नियुक्ति गवर्नर-जनरल के द्वारा होती है। **अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर** ने इस प्रसंग में संविधान सभा में कहा था कि "**समरूपता की प्राप्ति के लिए, अच्छे कार्य संचालन के लिए, राज्यपाल तथा मन्त्रिपरिषद के सम्बन्धों को दृढ़ एवं उपयोगी बनाने के लिए यही अच्छा है कि हम कनाडा के संविधान के अनुरूप ही व्यवस्था करें।**"[1]

राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति की इस पद्धति की आलोचना भी की गयी और इस प्रकार की आलोचना के प्रमुख रूप से दो आधार हैं—(1) संविधान के अन्तर्गत जिस समय यह व्यवस्था की गयी थी, उस समय यह सोचा गया था कि राज्यपाल प्रमुख रूप से अपने राज्य के संवैधानिक प्रधान और गौण रूप से राज्य में संघीय सरकार के अभिकर्ता के रूप में कार्य करेगा, किन्तु व्यवहार में राज्यपाल ने संघीय सरकार के अभिकर्ता (Agent) के रूप में ही अधिक कार्य किया है। केरल में 1959 ई. में, राजस्थान में 1967 ई. में, 1976 में तमिलनाडु और गुजरात में तथा अक्टूबर 1996 एवं 1997 में उत्तर प्रदेश में राज्यपाल के द्वारा जिस प्रकार प्रतिवेदन प्रस्तुत किये गये उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि राज्यपाल मुख्य रूप से अपने आपको केन्द्रीय सरकार का प्रतिनिधि मानता है। जनवरी 1993 में भाजपा द्वारा शासित राज्यों—राजस्थान, हिमाचल प्रदेश और मध्य प्रदेश में—बहुमत वाली सरकारों को बर्खास्त करने में राज्यपालों ने केन्द्र के एजेण्ट की भूमिका का निर्वाह किया। (2) आलोचकों का यह भी कहना है कि जब केन्द्र और राज्यों में अलग-अलग राजनीतिक दलों की सरकारें होंगी उस समय राज्यपाल और मुख्यमन्त्रियों में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। 1967-71 तथा 1996-2006 के काल में इस प्रकार की स्थिति अनेक राज्यों में देखी गई है।

राज्यपाल की नियुक्ति के सम्बन्ध में अपनायी गयी उपर्युक्त पद्धति की आलोचना की जा सकती है, लेकिन **पायली** के इन शब्दों को अपनाना उचित होगा कि "इस प्रकार की नियुक्ति की जो पद्धति संविधान-निर्माताओं द्वारा अपनायी गयी, वह प्रारम्भ में सोची गयी विविध पद्धतियों से कहीं उत्तम है और उनका कोई भी दोष इसमें नहीं है।"[2]

राज्यपाल की नियुक्ति के सम्बन्ध में राजमन्नार समिति के विचार—तमिलनाडु सरकार द्वारा नियुक्त 'राजमन्नार समिति' ने राज्यपाल की नियुक्ति के सम्बन्ध में प्रमुखतया दो सुझाव दिये : **प्रथम**, राज्यपाल की नियुक्ति को अन्तिम रूप देने के पूर्व केन्द्रीय सरकार को सम्बन्धित राज्य के मुख्यमन्त्री से परामर्श करने की परम्परा को जारी रखा जाना चाहिए। इससे राज्यपाल न केवल केन्द्रीय सरकार का मनोनीत व्यक्ति वरन् सम्बद्ध राज्य का भी मान्य व्यक्ति होगा। **द्वितीय**, समिति का सुझाव था कि संविधान में ऐसी व्यवस्था की जाय कि राष्ट्रपति राज्यपालों की नियुक्ति प्रख्यात न्यायशास्त्रियों, वकीलों और प्रशासकों की समिति के परामर्श पर करें।[3]

राज्यपाल की नियुक्ति के सम्बन्ध में कुछ परम्पराएं
(SOME CONVENTIONS REGARDING THE APPOINTMENT OF GOVERNOR)

संविधान लागू किये जाने के बाद से लेकर अब तक राज्यपाल की नियुक्ति के सम्बन्ध में कुछ परम्पराएं भी बन गयी हैं, जो इस प्रकार हैं :

(1) एक राज्य में किसी अन्य राज्य के निवासी को ही राज्यपाल नियुक्त किया जाता है, उस राज्य के निवासी को नहीं। इस परम्परा से दो लाभ हुए हैं : **प्रथम**, वह उस राज्य की दलबन्दियों और गुटबन्दियों से परे होता है और स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष अध्यक्ष और निर्णायक का कार्य अधिक अच्छी प्रकार से कर सकता है। **द्वितीय**, राज्य का मन्त्रिमण्डल कभी संकीर्ण प्रान्तीयतावाद के दृष्टिकोण को अपना सकता है, लेकिन राज्य से बाहर का निवासी राज्यपाल संकीर्ण प्रान्तीयतावाद के दृष्टिकोण से ऊपर उठकर समस्त भारत के हितों की दृष्टि से सोच सकता और कार्य कर सकता है। इस परम्परा के केवल दो अपवाद रहे हैं। एच. सी. मुखर्जी को अपने ही राज्य पश्चिम बंगाल में और मैसूर के महाराजा को मैसूर में ही राज्यपाल के पद पर नियुक्त किया गया।

(2) केन्द्रीय सरकार के द्वारा साधारणतया राज्यपाल के रूप में ऐसे व्यक्ति को नियुक्त किया जाता है जो कि सम्बन्धित राज्य के मन्त्रिमण्डल को मान्य हो। इसके अनुसार राज्यपाल की नियुक्ति से पूर्व संघीय सरकार सम्बन्धित राज्य के मुख्यमन्त्री से परामर्श ले लेती है लेकिन इस परम्परा का सभी परिस्थितियों में पालन नहीं किया गया। उदाहरण के लिए, श्रीप्रकाश को मद्रास का राज्यपाल नियुक्त करते समय और उड़ीसा में कुमारस्वामी राजा को राज्यपाल नियुक्त करते समय राज्य के मुख्यमन्त्री से सलाह नहीं मांगी गयी। उन परिस्थितियों में तो पण्डित नेहरू के व्यक्तित्व के कारण कोई विवाद उत्पन्न नहीं हुआ था, लेकिन 1967 के बाद की परिस्थितियों में जब पश्चिम बंगाल में धर्मवीर को और बिहार में एन. एन. कानूनगो को सम्बन्धित राज्यों के मुख्यमन्त्रियों की

1 "On the whole in the interest of harmony, in the interest of working, in the interest of sounder relations between the Provincial cabinet and the Governor it will be much better, if we accept the Canadian model."
—Alladi Krishanaswamy Aiyar, C. A. D., Vol. VII, p. 438

Scanned with CamScanner

सहमति के बिना राज्यपाल पद पर नियुक्त किया गया तो इसने मुख्यमन्त्री और राज्यपाल के बीच तनावपूर्ण सम्बन्धों को जन्म दिया। यद्यपि राज्य के मुख्यमन्त्री को राज्यपाल की नियुक्ति पर किसी प्रकार का निषेधाधिकार नहीं दिया जा सकता, लेकिन फिर भी मुख्यमन्त्री और राज्यपाल के बीच सद्भावनापूर्ण सम्बन्धों के हित में जहां तक सम्भव हो, इस परम्परा को अपनाया जाना चाहिए।

(3) एक अस्वस्थ परम्परा यह बन रही है कि निर्वाचन में पराजित और अन्य प्रकार से अस्वीकार्य केन्द्र में सत्तारूढ़ दल के राजनीतिज्ञों को राज्यपाल के पद पर नियुक्त कर दिया जाता है। इस सन्दर्भ में हाफिज मोहम्मद इब्राहीम, भीमसेन सच्चर, एच. वी. पाटस्कर और अजीत प्रसाद जैन, आदि के नाम लिये जा सकते हैं। स्वस्थ प्रजातन्त्र के हित में इस प्रवृत्ति को निरुत्साहित किया जाना चाहिए।

(4) प्रशासनिक सुधार आयोग ने अपनी रिपोर्ट में सुझाव दिया था कि किसी भी व्यक्ति को एक ही बार राज्यपाल के पद पर नियुक्त किया जाना चाहिए। मन्त्रिमण्डल सचिवालय ने इस सुझाव को स्वीकार कर लिया और मार्च 1976 के राज्यपाल सम्मेलन में प्रधानमन्त्री स्वर्गवासी श्रीमती गांधी ने कहा कि "**किसी राज्यपाल को उसका कार्यकाल समाप्त हो जाने के बाद सामान्य तौर पर फिर से नियुक्त नहीं किया जायेगा।**" अब तक ऐसी कोई परम्परा नहीं रही है, लेकिन यदि अब इसे अपनाया जाता है तो यह राज्यपाल की स्वतन्त्रता और निष्पक्षता को बनाये रखने में सहायक होगी।

अब तक राज्यपाल पद पर जिन व्यक्तियों द्वारा कार्य किया जा चुका है, उसके आधार पर निम्नलिखित तथ्य उभरकर सामने आते हैं : **प्रथम**, निर्वाचन में हारे हुए या अन्य प्रकार से अस्वीकार्य राजनीतिज्ञ इस पद पर नियुक्त किये गये। **द्वितीय**, केन्द्रीय मन्त्रियों को इस पद पर नियुक्त किया गया। **तृतीय**, अवकाश प्राप्त लोक सेवकों को राज्यपाल नियुक्त किया गया। **चतुर्थ**, विशिष्ट राजनीतिज्ञ या ख्यातिप्राप्त व्यक्तियों को राज्यपाल नियुक्त किया गया। **पंचम**, मुख्यमन्त्री और लोकसभा के सदस्यों को राज्यपाल नियुक्त किया गया।[1]

सरकारिया आयोग (केन्द्र-राज्य सम्बन्ध आयोग) ने अपने प्रतिवेदन में स्पष्ट लिखा है कि—"हमारी स्वतन्त्रता प्राप्ति से अक्टूबर 1984 तक की अवधि में राज्यपालों की हुई नियुक्तियों के सर्वेक्षण से स्पष्ट होता है कि राज्यपालों की कुल संख्या के 60 प्रतिशत से अधिक ने राजनीति में सक्रिय भाग लिया था, उनमें से अधिकांश ने तो अपनी नियुक्ति के तुरन्त पूर्व ऐसा किया। राज्यपाल के रूप में नियुक्त ऐसे व्यक्ति जो अन्य व्यवसायों में दक्ष थे उनकी संख्या 50 प्रतिशत से भी कम थी। प्रशासनिक सुधार आयोग की भारत सरकार द्वारा सिफारिशें स्वीकार करने के बावजूद 1980 के बाद के आंकड़ों की तुलना नेहरू काल के आंकड़ों से करने पर इस प्रतिशतता में और भी कमी नजर आती है।"[2]

सन् 1981 में तमिलनाडु के राज्यपाल प्रभुदास पटवारी, राजस्थान के राज्यपाल रघुकुल तिलक, 1992 में नगालैण्ड के राज्यपाल एम. एम. थामस, 14 मई, 1999 को अरुणाचल प्रदेश के राज्यपाल माताप्रसाद तथा 1 जुलाई, 2001 में तमिलनाडु की राज्यपाल फातिमा बीबी (बर्खास्तगी के भय से पद त्याग) को राष्ट्रपति द्वारा बर्खास्त किया गया जो अप्रत्याशित और अभूतपूर्व है। जुलाई, 2004 में केन्द्र की संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सरकार ने एक साथ चार राज्यपालों—कैलाशपति मिश्र (गुजरात), केदारनाथ साहनी (गोवा), बाबू परमानंद (हरियाणा), तथा विष्णुकांत शास्त्री (उत्तर प्रदेश) को बर्खास्त कर संकेत दिया कि राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की पृष्ठभूमि वाले राज्यपालों को हटाना एक नीतिगत फैसला है। तिलक अपने पांच वर्ष के कार्यकाल की समाप्ति पर थे। फातिमा बीबी ने बर्खास्तगी का आदेश प्राप्त होने से पूर्व ही अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। प्रसाद पर्यन्त यानी राष्ट्रपति की मर्जी के प्रावधान द्वारा राज्यपालों की बर्खास्तगी का विवादकारी सिलसिला चला है। राष्ट्रपति के प्रसाद या मर्जी के प्रयोग की यह परिपाटी अनुचित और संवैधानिक प्रमुख पद की गरिमा या सम्मान के हनन की यह प्रवृत्ति अवांछनीय बनती है। केन्द्र में सरकार बदलने अथवा विरोधी दल के सत्तारूढ़ होने पर राज्यपालों के पद त्याग की प्रथा नहीं है। राज्यपालों की बर्खास्तगी की प्रथा के विपरीत परिणति यह होगी कि देश के योग्य, आत्मसम्मान के धनी व्यक्ति इस पद के साथ जुड़ी बर्खास्तगी की आशंका के कारण इसे स्वीकार करने में झिझकेंगे।

राज्यपाल की नियुक्ति के सम्बन्ध में कतिपय सुझाव—भारतीय राजव्यवस्था में राज्यपाल पद की विशिष्ट स्थिति और अब तक की भारतीय राजनीति को दृष्टि में रखते हुए इस पद पर नियुक्ति के सम्बन्ध में कुछ सुझाव दिये जा सकते हैं : **प्रथम**, ऐसे व्यक्ति को राज्यपाल नियुक्त किया जाना चाहिए, जिसका व्यक्तित्व और आचरण अनुकरणीय हो। **द्वितीय**, राज्यपाल की नियुक्ति दलगत राजनीति

Scanned with CamScanner

से ऊपर उठकर की जानी चाहिए। **तृतीय**, राज्यपाल पद पर निर्वाचन में पराजित व्यक्तियों को नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए। **चतुर्थ**, राज्यपाल की नियुक्ति के सम्बन्ध में यथासम्भव सम्बन्धित राज्य के मुख्यमन्त्री की इच्छा का सम्मान किया जाना चाहिए। **पंचम**, किसी भी व्यक्ति को एक ही बार राज्यपाल पद पर नियुक्त किया जाना चाहिए। इसके साथ ही राज्यपालों के मनमाने तौर पर स्थानान्तरण नहीं किये जाने चाहिए, क्योंकि इससे राज्यपाल पद की प्रतिष्ठा को आघात पहुंचता है।

सरकारिया आयोग ने अपने प्रतिवेदन में लिखा है[1]—राज्यपाल के रूप में चुने जाने वाले प्रत्येक व्यक्ति को निम्नलिखित मानदण्डों पर खरा उतरना चाहिए :

(i) वह कुछ व्यवसायों में दक्ष हो।

(ii) वह राज्य के बाहर का व्यक्ति हो।

(iii) वह अरांपृक्त व्यक्ति हो तथा राज्य की स्थानीय राजनीति के साथ अधिक आत्मीयता से न जुड़ा हो।

(iv) वह ऐसा व्यक्ति हो जिसने सामान्य रूप से तथा विशेष रूप से हाल ही की पिछली अवधि में राजनीति में अत्यधिक मुखर रूप से भाग न लिया हो।

उपर्युक्त मानदण्ड के अनुसार किसी राज्यपाल का चयन करते समय अल्पसंख्यक वर्ग के व्यक्तियों को उसी प्रकार अवसर दिये जाते रहें जिस प्रकार अब तक दिये जाते रहे हैं।

(v) राज्यपाल के रूप में किसी व्यक्ति का चयन करने के लिए राज्य के मुख्यमन्त्री से प्रभावी सलाह- मशवरा सुनिश्चित करने की प्रक्रिया अनुच्छेद 153 में समुचित संशोधन करके संविधान में ही निर्धारित की जानी चाहिए।

(vi) यह वांछनीय होगा कि ऐसे किसी व्यक्ति को ऐसे किसी राज्य के राज्यपाल के रूप में नियुक्त न किया जाय जो केन्द्र में सत्तारूढ़ पार्टी का राजनीतिज्ञ हो, जिस राज्य का शासन किसी अन्य पार्टी द्वारा चलाया जा रहा हो अथवा अन्य पार्टियों के मेलजोल से चलाया जा रहा हो।

- अन्तर्राज्यीय परिषद की 7वीं बैठक (16 नवम्बर, 2001) में केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के बारे में की गई महत्वपूर्ण सिफारिश को नजरअन्दाज करते हुए तय किया कि कोई भी राज्यपाल दूसरे कार्यकाल के लिए तो पात्र होगा, लेकिन उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे सक्रिय राजनीति में नहीं लौटें। वे राष्ट्रपति एवं उप-राष्ट्रपति पद का चुनाव लड़ सकते हैं। बैठक में सर्वसम्मति से यह फैसला भी किया गया कि किसी भी राज्य में राज्यपाल की नियुक्ति से पहले उस राज्य की सहमति लेना केन्द्र के लिए अनिवार्य होगा। इस सम्बन्ध में संविधान में संशोधन करने का निश्चय किया गया।

कई राज्यों में लोक सेवा के वरिष्ठ अधिकारियों (Beauracrats) को भी राज्यपाल पद पर मनोनीत किया गया है। समस्या-प्रधान राज्यों (Problem States) में इन नौकरशाही की पृष्ठभूमि वाले राज्यपालों की प्रशंसनीय भूमिका रही है। डॉ. करणसिंह को छोड़कर जम्मू-कश्मीर के अधिकांश राज्यपाल लोक सेवा के व्यक्ति थे। ये थे भगवान सहाय, एल. के. झा, बी. के. नेहरू, जगमोहन और गिरीश चन्द्र सक्सेना। उत्तर-पूर्व राज्यों में भी भगवान सहाय, बी. के. नेहरू तथा एल. पी. सिंह को मनोनीत किया गया था। सन् 1966 में जब पंजाब का विभाजन करके हरियाणा बनाया जा रहा था तो धर्मवीर को राज्यपाल के रूप में भेजा गया था। बाद में उन्हें पश्चिम बंगाल जैसे समस्या प्रधान राज्य में भेजा गया। अक्टूबर 1983 में श्री भैरवदत्त पाण्डे को पश्चिम बंगाल से पंजाब स्थानान्तरित किया गया। नवम्बर 1999 में विनोद चन्द्र पाण्डे को बिहार का तथा वेद मरवाह को मणिपुर का राज्यपाल नियुक्त किया गया। समस्या-प्रधान राज्यों में सामान्यतया नौकरशाही पृष्ठभूमि वाले राज्यपालों की भूमिका प्रशंसनीय रही है।

राज्यपाल नियुक्त होने के लिए योग्यताएं (Qualifications for the Office of Governor)—संविधान के **अनुच्छेद** 157 के अनुसार, कोई व्यक्ति राज्यपाल नियुक्त होने का पात्र नहीं होगा जब तक वह भारत का नागरिक न हो तथा 35 वर्ष की आयु पूरी न कर चुका हो। **अनुच्छेद** 158 में राज्य के राज्यपाल पद के लिए कुछ शर्तों का भी उल्लेख है, जो निम्न हैं :

(1) राज्यपाल संसद अथवा किसी राज्य के विधानमण्डल के किसी सदन का सदस्य नहीं हो सकता। यदि कोई ऐसा व्यक्ति जो संसद अथवा राज्य के विधानमण्डल का सदस्य हो तो उसके राज्यपाल नियुक्त हो जाने पर यह समझा जावेगा कि जिस दिन से उसने राज्यपाल का पद ग्रहण किया, उस दिन से संसद अथवा राज्य के विधानमण्डल से उसका पद रिक्त हो गया है।

(2) राज्यपाल कोई अन्य लाभ का पद धारण नहीं करेगा।

(3) राज्यपाल को निःशुल्क निवास-स्थान मिलेगा तथा उसे वे सब वेतन, भत्ते, उपलब्धियां तथा विशेषाधिकार प्राप्त होंगे, जिन्हें संसद विधि द्वारा निर्धारित करे। वर्तमान समय में राज्यपाल को 75,000 रु. मासिक वेतन दिया जाता है। उसके वेतन तथा भत्तों

Scanned with CamScanner

उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं हुआ है, तो वह इस वर्ग के कुछ सदस्यों को मनोनीत कर सकता है। इस प्रकार राज्यपाल को विधायी क्षेत्र में भी व्यापक शक्तियां प्राप्त हैं।

वित्तीय शक्तियां (Financial Powers)—राज्यपाल को कुछ वित्तीय शक्तियां भी प्राप्त हैं। राज्य विधानसभा में राज्यपाल की पूर्व-स्वीकृति के बिना कोई भी धन विधेयक प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है। वह व्यवस्थापिका के समक्ष प्रतिवर्ष बजट प्रस्तुत करवाता है तथा उसकी सिफारिश के बिना कोई भी अनुदान की मांग नहीं की जा सकती है। राज्यपाल विधानमण्डल से पूरक, अतिरिक्त तथा अधिक अनुदान की भी मांग कर सकता है। राज्य की संचित निधि राज्यपाल के ही अधिकार में रहती है तथा विधानमण्डल से स्वीकृति की अपेक्षा में वह इस निधि से किसी प्रकार के व्यय की अनुमति दे सकता है।

न्यायिक शक्तियां (Judicial Powers)—संविधान के **अनुच्छेद** 161 के अनुसार जिन विषयों पर राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार होता है उन विषयों सम्बन्धी किसी विधि के विरुद्ध अपराध करने वाले व्यक्तियों के दण्ड को राज्यपाल कम कर सकता है, स्थगित कर सकता है, बदल सकता है तथा क्षमा भी कर सकता है।

विविध शक्तियां (Miscellaneous Powers)—उपर्युक्त के अतिरिक्त राज्यपाल को अन्य अनेक शक्तियां भी प्राप्त हैं :

(i) वह राज्य लोक सेवा आयोग का वार्षिक प्रतिवेदन और राज्य की आय-व्यय के सम्बन्ध में महालेखा परीक्षक का प्रतिवेदन प्राप्त करता है और उन्हें विधानमण्डल के समक्ष रखता है।

(ii) अगर वह देखता है कि राज्य का प्रशासन, संविधान के अनुसार चलना सम्भव नहीं है तो वह राष्ट्रपति को राज्य में संवैधानिक यन्त्र की विफलता के सम्बन्ध में सूचना देता है और उसके प्रतिवेदन पर राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू होता है। संकटकालीन स्थिति में वह राज्य के अन्दर राष्ट्रपति के अभिकर्ता के रूप में कार्य करता है।

(iii) संविधान के द्वारा किन्हीं राज्यों के राज्यपालों को कुछ विशेष कार्यों के सम्बन्ध में स्वविवेकीय शक्तियां भी प्रदान की गयी हैं। नगालैण्ड, सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश, असम, मिजोरम, मेघालय और त्रिपुरा के राज्यपालों को उनके अपने विवेक पर विशिष्ट कार्य कार्यान्वित करने के लिए सौंपे गये हैं।

Scanned with CamScanner